इकाई 1 पारंपरिक दृष्टिकोण*

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 समष्टि–अर्थशास्त्रीय मत की विभिन्न विचारधाराएँ

1.3 पारम्परिक दृष्टिकोण के मूल अभिलक्षण

1.4 उत्पादन और नियोजन का निर्धारण

1.5 मुद्रा–परिमाण सिद्धांत

1.6 से (Say) का बाजार नियम

1.7 पारम्परिक द्विभाजन

1.7.1 AD-AS साम्यावस्था

1.7.2 मुद्रा की तटस्थता

1.7.3 बचत–निवेश साम्यावस्था

1.8 दीर्घावधि बनाम अल्पावधि

1.9 सारांश

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस स्थिति में होंगे कि –

- पारम्परिक अर्थशास्त्र (Classical Economics) के मुख्य अभिलक्षणों पर प्रकाश डाल सकें;
- उत्पादन एवं नियोजन के निर्धारण संबंधी पारम्परिक दृष्टिकोण का विश्लेषण कर सकें;
- मुद्रा के परिमाण सिद्धांत और मूल्य निर्धारण पर इसके निहितार्थ की व्याख्या कर सकें;
- अर्थव्यवस्था में पारम्परिक द्विभाजन और पारम्परिक व्यवस्था में मुद्रा की तटस्थता की व्याख्या कर सकें; तथा
- दीर्घावधि और अल्पावधि में कीमतों के व्यवहार का वर्णन कर सकें।

1.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र का छात्र होने के नाते आपको ज्ञात होना चाहिए कि समष्टि–अर्थशास्त्रीय सिद्धांत समय के साथ गतिशील समष्टि–अर्थशास्त्रीय परिवेश के प्रत्युत्तर में विकसित हुआ है।प्रथमतः उन्नीसवीं एवं बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में अर्थशास्त्रियों और आर्थिक इतिहासकारों के बीच एक आम सहमति थी कि कोई भी अर्थव्यवस्था आय, उत्पादन और नियोजन में अधिक उतार–चढ़ाव के बिना सुचारु रूप से चल सकती है।

अवधारणा यह थी कि वेतन, कीमतों एवं ब्याज दरों जैसे आर्थिक चरों में राज्य का हस्तक्षेप न्यूनतम ही होना चाहिए। बाजार शक्तियाँ (आपूर्ति एवं माँग) अर्थव्यवस्था में आर्थिक साम्यावस्था का ध्यान रखती हैं। तथापि ऐसी अवधारणा अवास्तविक है – सभी सरकारों

* डॉ. जगन्नाथ मलिक, स्वतंत्र शोधकर्ता, नई दिल्ली।

की कुछ आर्थिक नीतियाँ होती हैं (यथा, मौद्रिक नीति एवं राजकोषीय नीति) और वे समय–समय पर इन नीतियों में संशोधन करती रहती हैं।

आर्थिक सिद्धांत अवधारणाओं एवं सिद्धांतों के किसी ऐसे समूह को इंगित करता है जिसका उपयोग कुछ 'परिघटनाओं' या अवलोकनीय घटनाओं का वर्णन, विश्लेषण एवं पूर्वानुमानन करने के लिए किया जाता है। जैसा कि आप जानते हैं, समष्टि–अर्थशास्त्रीय सिद्धांत समष्टि–अर्थशास्त्रीय परिघटनाओं से संबंधित होता है, जो कि प्रकृति में सामूहिक होती हैं। समष्टि अर्थशास्त्र की किसी विशेष शाखा की आवश्यकता इस कारण उत्पन्न होती है कि व्यक्तिगत इकाइयों के लिए जो कुछ भी होता है वह समग्र रूप से अर्थव्यवस्था के लिए संभवतः अच्छा न हो।

उदाहरण के लिए, मान लीजिए कि कोई फर्म उत्पाद (जैसे सीमेंट) के उत्पादन के लिए श्रम को नियोजित करती है। वह चालू वेतन दर पर जितने श्रमिकों की आवश्यकता हो उतने काम पर रख सकती है। इस प्रकार, किसी एक फर्म द्वारा श्रम की माँग में वृद्धि का वेतन दर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। तथापि, यदि किसी देश में सभी फर्में श्रम संबंधी अपनी माँग में वृद्धि करती हैं (माना देश में आर्थिक उछाल और आशावाद के कारण) तो श्रम की कमी और वेतन दर में वृद्धि होगी। इसके अलावा, देश में काम के लिए उपलब्ध श्रमिकों की संख्या सीमित हैय तदनुसार इस सीमा से परे श्रम की माँग से केवल वेतन दर में वृद्धि होगी, श्रम की आपूर्ति में नहीं।

आइए, अब हम वर्ष 2022 के वैश्विक ऊर्जा संकट पर नजर डालते हैं। इसने वैश्विक अभावों का रूप ले लिया और विश्व भर में तेल, गैस एवं बिजली की कीमतों में वृद्धि हुई। यह संकट विभिन्न प्रकार के सामाजिक एवं आर्थिक कारकों के कारण हुआ : श्रम की कमी, राजनीतिक विवाद, जलवायु संबंधी सरोकार और रूस व यूक्रेन के बीच युद्ध। विश्व अर्थव्यवस्था ऐसे संकटों का कुछ विशिष्ट तरीकों से जवाब देती है। उदाहरण के लिए, वर्ष 2022 के वैश्विक ऊर्जा संकट के दौरान तेल–निर्यातक देशों ने आय के अन्तर्वाह में वृद्धि देखी, जबकि पेट्रोलियम–आयात करने वाले देशों ने उत्पादन लागत में वृद्धि का अनुभव किया। अधिकांश देशों में विकट मुद्रास्फीति थी। मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिए नीति–निर्माताओं ने ब्याज दरों में वृद्धि और मुद्रा आपूर्ति में कटौती का सहारा लिया। देश मुद्रास्फीति को नियंत्रित करके और आर्थिक विकास को बढ़ावा देकर लोक कल्याण हेतु अपनी मौद्रिक एवं राजकोषीय नीतियाँ तैयार करते हैं। समष्टि–अर्थशास्त्रीय सिद्धांत अर्थशास्त्रियों एवं नीति–निर्माताओं का स्थिति की व्याख्या करने व उचित नीति उपायों को अभिकल्पित करने के लिए मार्गदर्शन करता है। अर्थशास्त्रियों के बीच फिर भी इस बात पर कोई सहमति नहीं है कि उत्पादन, कीमतों और नियोजन के साम्यावस्था स्तर कैसे निर्धारित किए जाते हैं। ऐतिहासिक रूप से आर्थिक आँकड़े एक समान हैं, किंतु अर्थशास्त्री आर्थिक समस्याओं के कारणों एवं समाधान पर भिन्न–भिन्न मत रखते हैं। व्यष्टि अर्थशास्त्र में कमोबेश कुछ आम सहमति होती है। समष्टि अर्थशास्त्र में, जैसा कि हम देखेंगे, एक ही परिघटना के लिए तीक्ष्ण और प्रायः पूर्णतः भिन्न व्याख्याएँ एवं नीतिगत संस्तुतियाँ होती हैं। समष्टि अर्थशास्त्र वाद–विवाद के अधीन रहा है, विशेषकर सन 1930 के दशक से। अर्थशास्त्रियों के बीच इस प्रकार के मतभेदों के पीछे कारण मूल अवधारणाएँ और उनके द्वारा अपनाए गए मॉडल रहे हैं। दो प्रमुख विचारधाराओं – पारम्परिक और केन्जियन – ने आर्थिक परिघटनाओं की भिन्न–भिन्न व्याख्याएँ की हैं। तदनुसार, उन्होंने एक ही आर्थिक मुद्दे के लिए भिन्न–भिन्न स्पष्टीकरण दिए हैं। इस इकाई में हम पारम्परिक सिद्धांतों पर ध्यान केंद्रित करेंगे, जबकि केन्जियन सिद्धांतों पर चर्चा इकाई 2 में की जाएगी।

1.2 समष्टि–अर्थशास्त्रीय मत की विभिन्न विचारधाराएँ

समष्टि अर्थशास्त्र की कोई भी विचारधारा किसी अर्थव्यवस्था में समष्टि–अर्थशास्त्रीय चरों के व्यवहार के प्रति एक समान दृष्टिकोण रखने वाले समष्टि–अर्थशास्त्रीय विचारकों के किसी समूह को इंगित करता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, अर्थशास्त्री व्यापक आर्थिक समस्याओं से निपटने के प्रति हमेशा कोई एक समान दृष्टिकोण नहीं रखते हैं। उदाहरण के लिए, महामंदी (Great Depression) की प्रतिक्रिया स्वरूप केन्जियन सिद्धांत अस्तित्व में आया।

सन 1970 के दशक के दौरान आगे की आर्थिक परिघटनाओं ने पारम्परिक अवधारणाओं को न्यू पारम्परिक अर्थशास्त्र के रूप में पुनर्जीवित किया। न्यू पारम्परिक अर्थशास्त्र की प्रतिक्रिया स्वरूप में एक नई विचारधारा – न्यू केन्जियन अर्थशास्त्र – का उदय केन्जियन अर्थशास्त्र में व्यष्टिक आधार और तर्कसंगत अपेक्षाओं का समावेश करके हुआ था। इस पाठ्यक्रम के अंत की इकाइयों में हम इन दोनों विचारधाराओं के विषय में विस्तृत चर्चा करेंगे।

पारम्परिक अर्थशास्त्र अठारहवीं एवं उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में प्रचलित एक विचारधारा को इंगित करता है। इसके अनुसार, किसी अर्थव्यवस्था में आर्थिक चरों के स्तर बाजार शक्तिओं के माध्यम से निर्धारित होते हैं। इसका तात्पर्य है कि अर्थव्यवस्था में वेतन, कीमतें और ब्याज दरें लचीली होती हैं। तथापि, ग्रेट डिप्रेशन (1929–1933) की घटना, जिसमें आय, उत्पादन, नियोजन एवं मूल्य स्तर में भारी गिरावट, शेयर बाजार का औंधे मुँह गिरना और बैंक व्यवसाय का संत्रास देखा गया, ने ऐसी धारणाओं को मिथ्या साबित कर दिया। इसने अर्थव्यवस्था में उत्पादन एवं नियोजन में आवधिक उतार–चढ़ाव विषयक नई व्याख्याओं की ओर प्रवृत्त किया।

जॉन मेनार्ड कीन्स, एक ब्रिटिश अर्थशास्त्री, ने पारम्परिक विचारों का विरोध किया और इस पक्ष का समर्थन किया कि कीमतें एवं वेतन लोचदार नहीं अपितु चिपचिपे होते हैं। उन्होंने ही स्वयं से पहले के अर्थशास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत विचारों को प्रकट करने के लिए ''पारम्परिक'' शब्द गढ़ा। पारम्परिक अर्थशास्त्रियों में प्रमुख हैं – एडम स्मिथ, डेविड रिकार्डो, थॉमस माल्थस, ऐनी रॉबर्ट जैक्स टर्गोट, जॉन स्टुअर्ट मिल, जीन–बैप्टिस्ट से एवं यूजेन बोहम वॉन बावेर्क।

पारम्परिक अर्थशास्त्रियों के विपरीत, कीन्स ने इस पक्ष का समर्थन किया कि मंदी कारक दशाओं का सामना करने के लिए सरकार को बाजार में सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करना चाहिए। कीन्स की अवधारणाओं से समष्टि–अर्थशास्त्रीय सिद्धांत की एक नयी विचारधारा विकसित हुई, जिसे केन्जियन विचारधारा (Keynesian school) कहा जाता है। केन्जियन अर्थशास्त्रियों के अनुसार, वास्तविक उत्पादन किसी अर्थव्यवस्था के संभावित उत्पादन से कम हो सकता है और इस अंतर को राजकोषीय एवं मौद्रिक नीति हस्तक्षेपों के माध्यम से समाप्त किया जा सकता है।

इस प्रकार, अर्थशास्त्र की दो प्रमुख विचारधाराएँ सामने आईं – पारम्परिक और केन्जियन। इनमें पारम्परिक विचारधारा का उदय 18वीं और 19वीं शताब्दी के मध्य हुआ। इसने धन–संपत्ति में उल्लेखनीय वृद्धि की व्याख्या एवं विश्लेषण करने का प्रयास किया। पारम्परिक सिद्धांत पूरी तरह से लचीली कीमतों और वेतन संबंधी अवधारणा पर निर्भर करता है, जिसके परिणामस्वरूप बाजार में स्वतः समायोजन होता है, जिससे कुल माँग का शून्य अभाव सुनिश्चित हो जाता है। अर्थव्यवस्था अपनी पूर्ण क्षमता या पूर्ण नियोजन स्तर पर काम करती है। बहरहाल, ये क्लासिक अवधारणाएँ सन 1930 के दशक की महामंदी को समझाने और समझने में विफल रहीं।

इस मंदी ने सभी प्रमुख उन्नत देशों को प्रभावित किया था, जहाँ लगभग एक चौथाई श्रम बल बेरोजगार हो गया था।

इसी पृष्ठभूमि में जॉन मेनार्ड कीन्स ने अपने विचारों को प्रस्तुत किया, जिसे केन्जियन सिद्धांत कहा जाता है। उन्होंने इस घटना की व्याख्या करने का प्रयास किया और तर्क दिया कि इतने बड़े स्तर पर बेरोजगारी अपर्याप्त कुल माँग के कारण थी, जो कि फिर निवेश की माँग में कमी का परिणाम रही। उन्होंने क्लासिक सिद्धांत में स्वेच्छा व्यापार (laissez-faire) अर्थव्यवस्था की अवधारणा की आलोचना की और माँग एवं नियोजन बढ़ाने के लिए नीतिगत हस्तक्षेप का पक्ष समर्थन किया।

तदंतर दोनों विचारधाराओं को एकीकृत करने का प्रयास किया गया, जिसने ''न्यू पारम्परिक या नवशास्त्रीय संश्लेषण'' की ओर अग्रसर किया। उत्पादों एवं मुद्रा बाजारों के सामान्य संतुलन की प्रक्रिया की व्याख्या करता IS-LM मॉडल, जिस पर हम इकाई 3 में चर्चा करेंगे, नवपारंपरिक संश्लेषण का ही परिणाम है। सन 1950 के दशक के दौरान हैरोड, डोमर एवं कलडोर जैसे अर्थशास्त्रियों ने केन्जियन अवधारणाओं को अल्पावधि से दीर्घकाल तक विस्तारित किया। उन्होंने तर्क दिया कि बड़े स्तर पर निवेश से अंततोगत्वा उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है। यह फिर आर्थिक विकास को बढ़ावा देता है। पोस्ट–केन्जियन कहे जाने वाले इन अर्थशास्त्रियों का ध्यान आर्थिक विकास को समझने, समझाने और उसका विश्लेषण करने पर ही रहा। पोस्ट–केन्जियन विकास मॉडल की कुछ विशिष्ट कमियों को दूर करने के लिए रॉबर्ट एम. सोलो नवपारंपरिक विकास मॉडल लेकर सामने आए। हम इन विकास मॉडलों के विषय में 'संवृद्धि एवं विकास का अर्थशास्त्र' नामक पाठ्यक्रम में जानेंगे।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद सन 1970 के दशक तक आर्थिक सिद्धांत और नीति पर केन्जियन विचारधारा का ही प्रभुत्व रहा। इस दशक के दौरान अधिकांश उन्नत अर्थव्यवस्थाओं में गतिरोध और मुद्रास्फीति देखी गई, एक ऐसी स्थिति जिसे मुद्रास्फीतिजनित मंदी (stagflation) कहा जाता है। केन्जियन सिद्धांतों में मुद्रास्फीतिजनित मंदी के लिए उचित नीतिगत प्रतिक्रिया नहीं थी, जिसके कारण आर्थिक व्यवहार के नए स्पष्टीकरणों की खोज हुई।

रॉबर्ट ई. लुकास, एक अमेरिकी अर्थशास्त्री, ने पारम्परिक अवधारणाओं को पुनर्जीवित किया और प्रचलित केन्जियन अवधारणा को चुनौती दी। पारम्परिक और केन्जियन विचारधाराएँ विभिन्न मुद्दों पर एक दूसरे से भिन्न हैं, जिनमें शामिल हैं –

(i) संतुलन उत्पादन, नियोजन और कीमतों के निर्धारण में माँग एवं आपूर्ति द्वारा निभाई गई भूमिका;

(ii) अर्थव्यवस्था में मूल्य स्तर और वेतन दर के लचीलेपन की अवधारणा;

(iii) अर्थव्यवस्था के वास्तविक एवं मौद्रिक क्षेत्रों का द्विभाजन, तथा

(iv) मुद्रा की तटस्थता।

सन 1970 के दशक के बाद, बहरहाल, न्यू–क्लासिकल सिद्धांत के रूप में पारम्परिक अर्थशास्त्र का पुनरुद्धार हुआ। इसके प्रत्युत्तर में न्यू–केन्जियन मॉडल सामने आए। न्यू–क्लासिकल अर्थशास्त्र ने पारम्परिक अर्थशास्त्र के मौलिक अभिलक्षणों को तो बरकरार रखा किंतु दो नई अवधारणाओं को प्रस्तुत किया – तर्कसंगत अपेक्षाएँ और व्यष्टिक आधार। हम इन पहलुओं पर इस पाठ्यक्रम की बाद की इकाइयों में चर्चा करेंगे।

उक्त मुख्यधारा की विचारधाराओं के साथ–साथ परंपरा–विरोधी विचारधाराएँ या अरूढ़िवादी अर्थशास्त्र (heterodox economics) भी अस्तित्व में हैं। इनमें कई अन्य लोगों के अलावा मार्क्सवादी, ऑस्ट्रियाई, संस्थागत नारीवादी एवं सामाजिक अर्थशास्त्री भी शामिल हैं।

वास्तव में आजकल अर्थशास्त्र में बहुलवाद (pluralism) को बढ़ावा देने की आवश्यकता है और अनुसंधानकर्ता अनेक नए क्षेत्रों में प्रवेश कर रहे हैं। मुख्यधारा या पारंपरिक अर्थशास्त्र, जैसा कि उल्लेख किया गया है, पहले पारम्परिक और केन्जियन ही रहा है। इन दोनों विचारधाराओं की विरासत अलग–अलग रूपों में जारी रही है। हाल के वर्षों में दो प्रमुख विचारधाराएँ न्यू–क्लासिकल अर्थशास्त्र (new-classical economics) और न्यू–केन्जियन अर्थशास्त्र (new-Keynesian economics) ही रही हैं। इन दो विचारधाराओं के कुछ सामान्य अभिलक्षण निम्नवत् हैं –

(i) सामान्य साम्यावस्था (general equilibrium) मॉडल,

(ii) आर्थिक अभिकर्ताओं के व्यवहार में व्यष्टिक आधार (micro-economic foundation), तथा,

(iii) तर्कसंगत अपेक्षाएँ।

इन दोनों विचारधाराओं के बीच दो प्रमुख अंतर निम्नलिखित हैं –

(i) बाजार–प्राधार विषयक अवधारणा – न्यू–क्लासिकल विचारधारा मानती है कि बाजार में पूर्ण प्रतिस्पर्धा होती है, जबकि न्यू–केन्जियन विचारधारा बाजार की अपूर्णता को मानती है।

(ii) वेतन और कीमतों में लचीलेपन की अवधारणा – न्यू–क्लासिकल विचारधारा वेतन और कीमतों में लचीलेपन को मानती है, जबकि न्यू–केन्जियन विचारधारा वेतन और कीमतों में कठोरता को मानती है।

1.3 पारम्परिक सिद्धांत के मूल अभिलक्षण

पारम्परिक अर्थशास्त्र 'वणिकवाद' की अवधारणा के प्रत्युत्तर में विकसित हुआ। वणिक वर्ग अर्थात् व्यापारियों का मानना था कि राष्ट्रों की संपत्ति बुलियन (या, सोने–चाँदी) के भंडार पर निर्भर करती है। इस कारण ये वणिक ऐसी नीतियाँ अपनाते थे जो निर्यात को बढ़ावा देती हों, और सब्सिडी व टैरिफ के माध्यम से आयात को हतोत्साहित करते थे। पारम्परिक अर्थशास्त्रियों ने ऐसी अवधारणाओं को निरस्त कर दिया और माना कि 'राष्ट्रों का धन' वास्तविक कारकों पर निर्भर करता है। उनके अनुसार पैसा विनिमय का माध्यम मात्र है। पारम्परिक सिद्धांत के महत्वपूर्ण अभिलक्षण निम्नवत् हैं –

(i) **व्यष्टि–अर्थशास्त्रीय मुद्दे** : पारम्परिक अर्थशास्त्रियों ने अधिकांशतः फर्म, परिवार आदि आर्थिक अभिकर्ताओं के व्यवहार से संबंधित व्यष्टि–अर्थशास्त्रीय मुद्दों से ही सरोकार रखा। पारम्परिक दृष्टि से कोई भी फर्म अपने लाभ को अधिकतम करती है, जो कि संसाधन निबाध के अधीन होती है। इसी प्रकार, परिवार अपने बजट निबाधों को देखते हुए अपनी उपयोगिताओं अथवा आर्थिक लाभ को अधिकतम करने का प्रयास करते हैं। पारम्परिक अर्थशास्त्री बाजार तंत्र की अनुकूलन प्रवृत्तियों में विश्वास करते थे।

इन अर्थशास्त्रियों के अनुसार मूल्य स्तर, वेतन दर और उत्पादन स्तर जैसे चर बाजार शक्तियों (आपूर्ति एवं माँग) द्वारा निर्धारित किए जाने चाहिए।

(ii) **स्वेच्छा व्यापार** : पारम्परिक अर्थशास्त्री 'लाईसेज फेयर' के दर्शन में विश्वास करते थे, जो कि एक फ्रांसीसी पदबंध है, जिसका अर्थ है 'अकेले छोड़ दो' या 'आपको करने दें'। इस मत के अनुसार व्यापारिक मामलों में सरकार का न्यूनतम हस्तक्षेप होना चाहिए। दरअसल, एडम स्मिथ ने सुझाव दिया कि सरकार स्वयं को तीन मुख्य कर्तव्यों तक ही सीमित रखे, यथा – (i) राष्ट्र की रक्षा, (ii) न्याय प्रबंधन (कानून एवं व्यवस्था), तथा (iii) कुछ सार्वजनिक कार्यों (अवसंरचना, शिक्षा आदि) का संस्थापन

एवं अनुरक्षण।

(iii) **अदृश्य हाथ** (invisible hand) : एडम स्मिथ ने 'अदृश्य हाथ' की अवधारणा प्रस्तुत की। उनके अनुसार, यदि हर व्यक्ति अपने हित में काम करे तो अर्थव्यवस्था भली भाँति काम करेगी। उनके शब्दों में, ''यह कसाई, मद्य–निर्माता या नानबाई के परोपकार से नहीं है कि हम अपने रात्रिभोज की आशा करते हैं, बल्कि यह उनके अपने हित से संबंध रखता है।'' ऐसा लगता है मानो स्व–हित का अनुसरण करने वाले व्यक्ति अर्थव्यवस्था में सभी का सामान्य कल्याण अधिकतम करने के लिए किसी 'अदृश्य हाथ' के नेतृत्व में हों। किसी वस्तु को बेचने में उत्पादक की उदारता नहीं होतीय यहाँ उसका स्वयं का हित होता है।

इसी प्रकार, उपभोक्ता निर्माता पर कोई एहसान नहीं कर रहे होते; वे खरीदने में अपनी रुचि का अनुसरण कर रहे होते हैं। अदृश्य हाथ के दर्शन ने पारम्परिक अर्थशास्त्रियों को आर्थिक अभिकर्ताओं के व्यवहार संबंधी विश्लेषण तक सीमित कर दिया; वे आर्थिक अभिकर्ताओं और संपूर्ण अर्थव्यवस्था के हितों के बीच किसी भी प्रकार के संघर्ष को देखने में विफल रहे।

(iv) **सतत बाजार समाशोधनः** पारम्परिक अर्थशास्त्रियों ने माना कि कीमतें और वेतन दरें लचीली होती हैं। जैसा कि आप व्यष्टि अर्थशास्त्र से जानते हैं, संतुलन मूल्य उस स्तर पर निर्धारित होता है जहाँ आपूर्ति और माँग बराबर होते हैं। आपूर्ति और माँग वक्रों को देखते हुए, यदि आपूर्ति की तुलना में माँग अधिक हो तो कीमत में वृद्धि होगी। इसी प्रकार, यदि माँग की तुलना में आपूर्ति अधिक हो तो कीमत घटेगी। यह सिद्धांत न केवल वस्तुओं पर लागू होता है, बल्कि वेतन दर पर भी लागू होता है।

यदि श्रम की आपूर्ति उसकी माँग से अधिक हो तो वेतन दर में तब तक गिरावट आएगी जब तक श्रम की आपूर्ति उसकी माँग के बराबर न हो जाए। उपर्युक्त का एक निहितार्थ यह है कि अर्थव्यवस्था में कोई बेरोजगारी नहीं होती है – जब तक सभी श्रमिकों को नियोजित नहीं किया जाता तब तक वेतन दर में गिरावट आती रहेगी। बाजार में कोई असंतुलन नहीं होता है।

(v) **पूर्ण प्रतिस्पर्धा** : पारम्परिक अर्थशास्त्रियों ने माना कि बाजार में पूर्ण प्रतिस्पर्धा होती है, जिससे बाजार सुचारु रूप से कार्य करता रहता है। चूँकि यहाँ पूर्ण नियोजन होता है (वेतन दर में लचीलेपन के कारण), उत्पादन हमेशा पूर्ण नियोजन स्तर पर होता है। उपर्युक्त का एक निहितार्थ यह है कि उत्पादन के स्तर में उतार–चढ़ाव की कोई गुंजाइश नहीं होती है। इस तर्क के आधार पर पारम्परिक अर्थशास्त्रियों ने 'व्यापार चक्र' की संभावना को निरस्त कर दिया।

(vi) **से का बाजार नियम** : पारम्परिक अर्थशास्त्रियों का मानना था कि उत्पादन या आपूर्ति आर्थिक समृद्धि की कुंजी होती है। तदनुसार उन्होंने अर्थव्यवस्था के आपूर्ति पक्ष पर अधिक बल दिया। प्रमुख पारम्परिक अर्थशास्त्री जे.बी. से (J B Say) के नाम पर, से के नियम में इस दृष्टिकोण को बहुत अच्छी तरह से संक्षेपित किया गया है। जे.बी. से के अनुसार, 'आपूर्ति अपनी माँग स्वयं उत्पन्न करती है।' जब भी कुछ उत्पादन होता है तो लोगों के हाथ में आय का प्रवाह होता है, जिससे माँग उत्पन्न होती है।

किसी भी व्यक्ति को बेचने के लिए पहले कुछ उत्पादन कर लेना होता है (जैसे, उदाहरण के लिए, श्रम) और तदनुसार कुछ निश्चित आय अर्जित कर लेनी होती है। इस प्रकार, पारम्परिक दृष्टिकोण से अर्थव्यवस्था में माँग के अभाव की कोई गुंजाइश नहीं होती है। अतएव, किसी भी अर्थव्यवस्था के सामने प्राथमिक चिंत्य विषय उत्पादन या आपूर्ति होता है, न कि माँग।

(vii) **मुद्रा की तटस्थता** (neutrality of money) : पारम्परिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, किसी भी अर्थव्यवस्था की आर्थिक संवृद्धि उत्पादन और प्रौद्योगिकीय प्रगति के कारकों में वृद्धि के कारण होती है। पैसा विनिमय का माध्यम मात्र होता है; और यह आर्थिक अभिकर्ताओं के बीच लेन–देन की सुविधा ही प्रदान करता है। तदनुसार, मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि उत्पादन के स्तर को प्रभावित नहीं करती है – यह केवल कीमतों में वृद्धि की ओर ले जाती है (आगे स्पष्ट किया गया 'मुद्रा–परिमाण सिद्धांत' देखें)। उनका मानना था कि मुद्रा आपूर्ति एवं कीमतों जैसे मौद्रिक चरों और उत्पादन एवं नियोजन जैसे वास्तविक चरों के बीच विरोधाभास होता है।

इस प्रकार, पारम्परिक अर्थशास्त्रियों ने उत्पादन एवं नियोजन जैसे वास्तविक चरों को तय करने में वास्तविक कारकों की भूमिका पर बल दिया।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, पारम्परिक अर्थशास्त्री सरकार के हस्तक्षेप के बिना मुक्त बाजार व्यवस्था में विश्वास करते थे। पारम्परिक प्रणाली में उत्पादन, नियोजन और ब्याज दर का निर्धारण आगे दिया गया है।

हम अगले पाठांश में कुछ प्रमुख मुद्दों पर चर्चा करेंगे।

बोध प्रश्न 1

1) पारम्परिक सिद्धांत के महत्वपूर्ण अभिलक्षणों को लिखिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) न्यू–क्लासिकल अर्थशास्त्र के मुख्य अभिलक्षण क्या हैं? स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

1.4 उत्पादन और नियोजन का निर्धारण

पारम्परिक सिद्धांत निम्नलिखित मान्यताओं पर आधारित है –

a) फर्म और कर्मचारी आशावादी होते हैं,

b) उनके पास पूर्ण जानकारी होती है, तथा

c) वे प्रतिस्पर्धी (परिपूर्ण) बाजारों में काम करते हैं।

उपर्युक्त का एक निहितार्थ यह है कि वेतन और कीमतें पूरी तरह से लचीली होती हैं। पूर्ण प्रतिस्पर्धा में लाभ अधिकतम करने वाली फर्मों के लिए श्रम की माँग निम्नवत् होती है –

$$P = W/MPN \quad \ldots (1.1)$$

जहाँ, P उत्पाद की कीमत है,

W अंकित वेतन है, और

MPN श्रम का सीमांत उत्पाद है।

चूँकि यहाँ पूर्ण प्रतिस्पर्धा है, P सीमांत राजस्व (MR) के बराबर होगा, जो कि उत्पाद की एक इकाई की बिक्री से प्राप्त होता है। यहाँ, W/MPN उत्पादन की सीमांत लागत को निर्दिष्ट करता है, यथा, उत्पाद की एक अतिरिक्त इकाई की उत्पादन लागत।

समीकरण (1.1) को पुनः निम्नवत् लिखा जा सकता है –

$$MPN = W/P \quad \ldots (1.2)$$

(हम अंकित वेतन को कैपिटल W से और वास्तविक वेतन को लोअर केस w से निरूपित करते हैं।)

समीकरण (1.2) इंगित करता है कि श्रम का सीमांत उत्पाद वास्तविक वेतन (W/P) के बराबर होता है। अतः वास्तविक वेतन के संदर्भ में श्रम माँग वक्र और कुछ नहीं बल्कि श्रम का सीमांत उत्पाद ही होता है। श्रम माँग वक्र अधोमुखी प्रवण होता है।

$$MPN_d = f(W/P) \quad \ldots (1.3)$$

श्रम की आपूर्ति वास्तविक वेतन से सकारात्मक रूप से भिन्न होती है। वह यह मानकर चलती है कि व्यक्तिगत श्रम अपनी उपयोगिता को अधिकतम करता है।

इसे इस प्रकार लिखा जा सकता है –

$$N_S = g(W/P) \quad \ldots (1.4)$$

जहाँ N_S श्रम की आपूर्ति को इंगित करता है। नीचे चित्र 1.1 में श्रम बाजार में साम्यावस्था की व्याख्या की गई है। ध्यान दें कि श्रम बाजार श्रम के पूर्ण नियोजन पर साम्यावस्था में है। संतुलन बिंदु पर श्रम की आपूर्ति श्रम की माँग के बराबर होती है। ऊपरी खंड में श्रम की आपूर्ति और श्रम की माँग को वास्तविक वेतन के फलन $\left(\frac{W}{P}\right)$ के रूप में दर्शाया गया है। निचले खंड में अंकित वेतन के फलन स्वरूप श्रम आपूर्ति और श्रम माँग को दर्शाया गया है।

चूँकि मूल्य स्तर पहले P_1 से P_2 तक और फिर P_3 तक बढ़ता है, यदि अंकित वेतन क्रमशः 2W व 3W तक बढ़ जाता है तो वास्तविक वेतन को उसी स्तर पर बनाए रखा जा सकता है।

श्रम आपूर्ति वक्र और श्रम माँग वक्र में खिसकाव चित्र 1.1 के खंड (b) में दर्शाए गए हैं। ध्यान दें कि श्रम आपूर्ति में कोई बदलाव नहीं है क्योंकि पूर्ण नियोजन सुनिश्चित है (क्योंकि वास्तविक वेतन में कोई बदलाव नहीं हुआ है)। यदि उत्पाद की कीमतों में वृद्धि होती है किंतु अंकित वेतन दर में कोई वृद्धि नहीं होती है तो वास्तविक वेतन में गिरावट आएगी। इससे श्रम आपूर्ति में कमी आएगी।

चलिए, मान लेते हैं कि उत्पादन के केवल दो कारक होते हैं, यथा श्रम और पूँजी। उत्पादन फलन $Y = F(K,N)$ से निर्धारित किया जाता है, जैसा कि चित्र 1.2, खंड (a) में दर्शाया गया है।

श्रम बाजार में साम्यावस्था (चित्र 1.2 का खंड (b) देखें) ही पूर्ण नियोजन श्रम आपूर्ति और वास्तविक वेतन दर निर्धारित करती है। इसी आधार पर चित्र 1.2 के खंड (b) में पूर्ण नियोजन दर्शाया गया है। जैसा कि आप देख सकते हैं, अर्थव्यवस्था पूर्ण नियोजन

उत्पादन (Y_0) और पूर्णनियोजन श्रम आपूर्ति (N_0) के साथ चलती है।

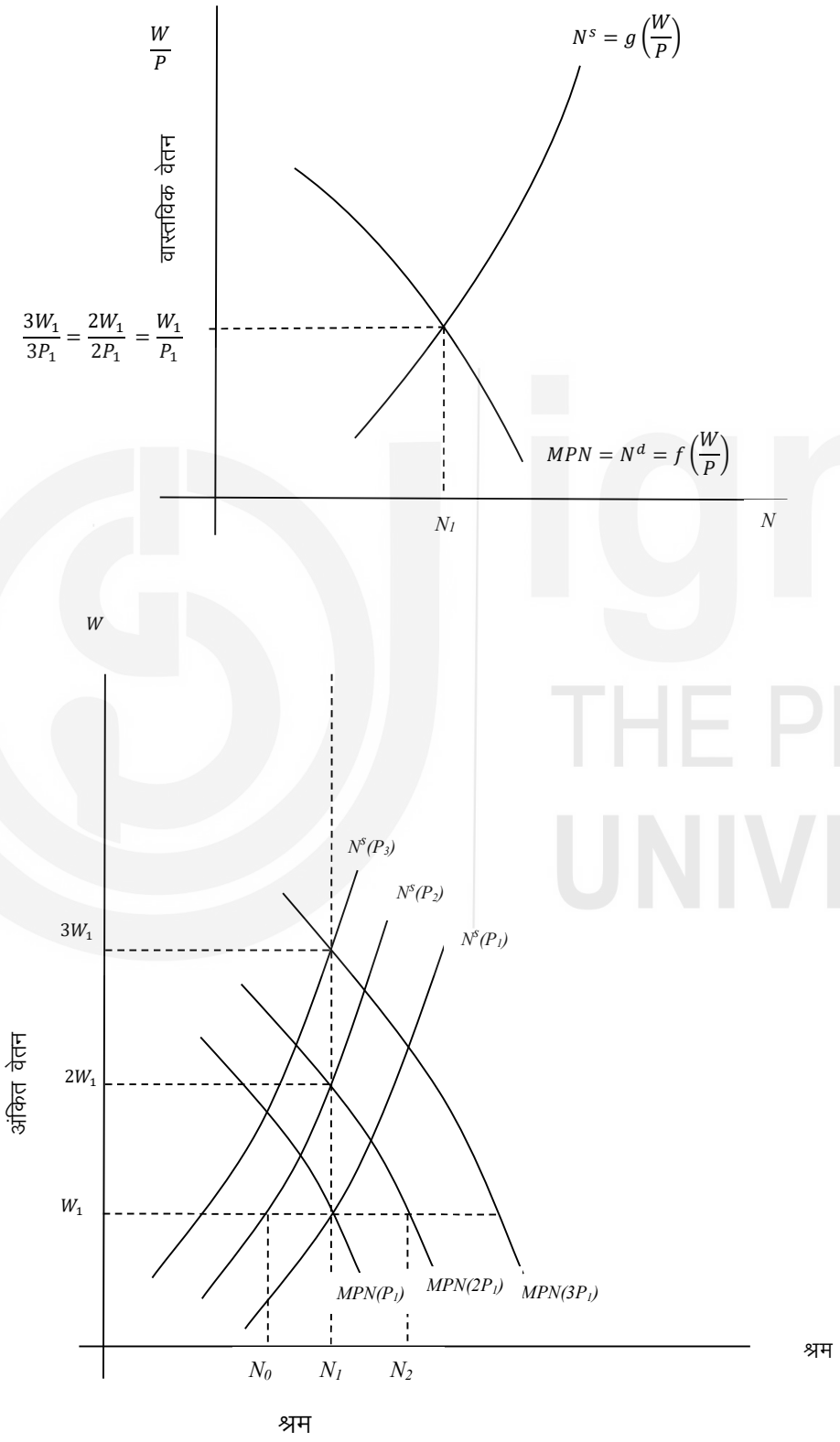

चित्र 1.1: श्रम की आपूर्ति और उसकी माँग

चूँकि किसी दिए गए उत्पादन फलन और पूँजी के साथ अर्थव्यवस्था में हर समय पूर्ण नियोजन होता है, कुल आपूर्ति (AS) उत्पादन के पूर्ण नियोजन स्तर पर लोचहीन होती है।

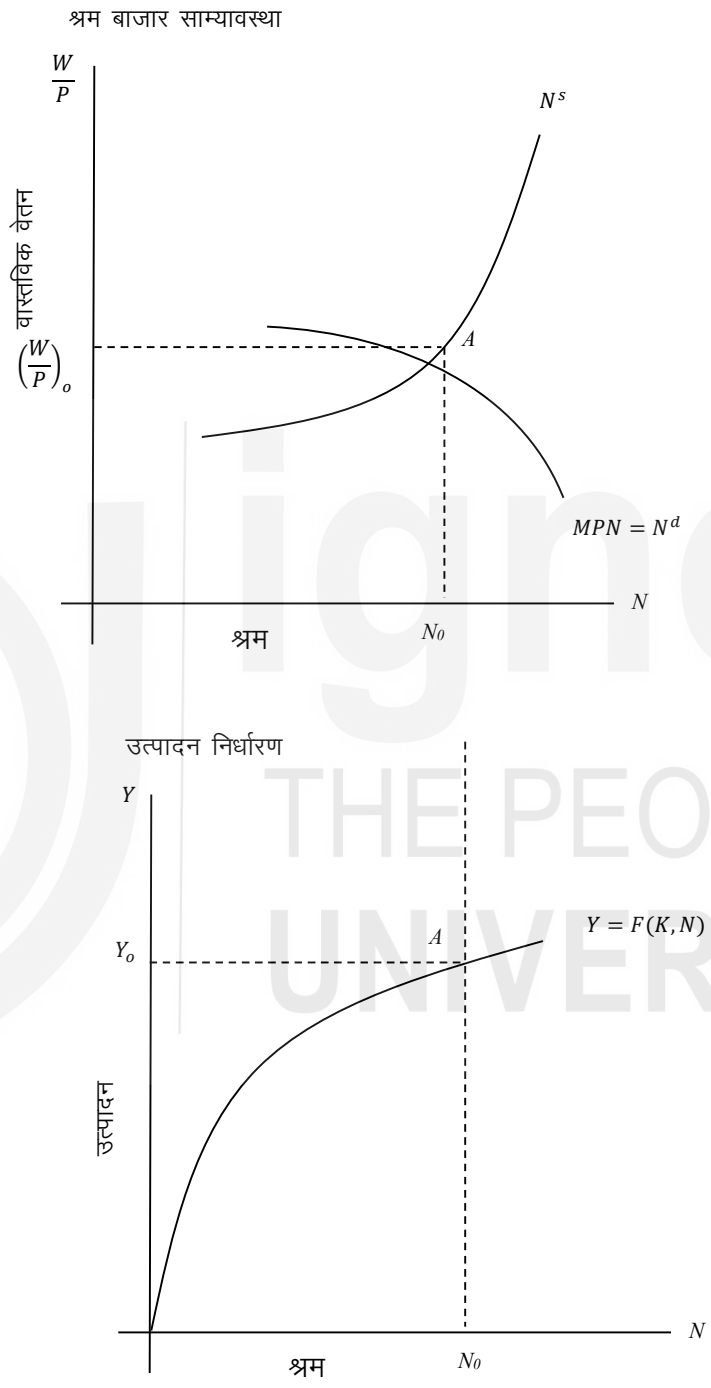

चित्र 1.2: संतुलन उत्पादन और नियोजन

चित्र 1.3 में AS वक्र को एक लंबवत् ऋजु रेखा के रूप में दर्शाया गया है।

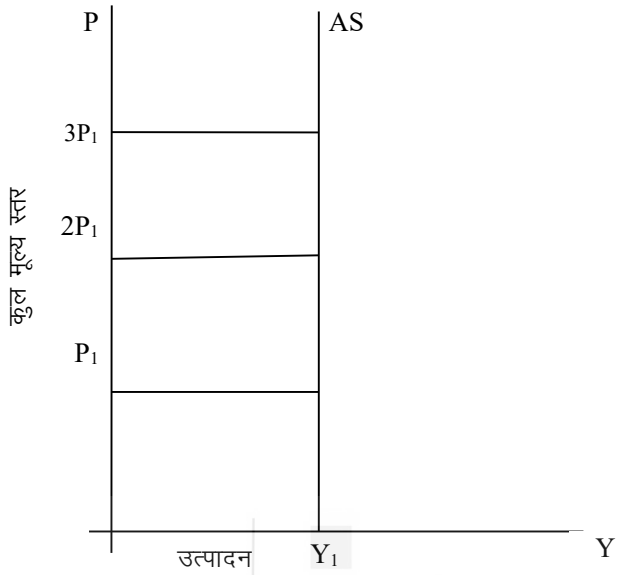

चित्र 1.3: कुल आपूर्ति वक्र

ध्यान दें कि प्रौद्योगिकी के स्तर (उत्पादन फलन) या पूँजी के स्तर में बदलाव होने पर AS वक्र खिसक जाएगा।

1.5 मुद्रा–परिमाण सिद्धांत

मुद्रा भंडार में परिवर्तन के प्रभावों को समझने के लिए हमें मुद्रा बाजार की साम्यावस्था का अध्ययन करने की आवश्यकता होगी। मुद्रा एक स्टॉक भंडार चर है। इसके भंडार का अभिप्राय किसी समय–बिंदु पर उसकी मात्रा से होता है। मुद्रा एक परिसंपत्ति है, जिसे जनता अपने पास रखने के लिए माँगती है। मुद्रा की आपूर्ति सरकार और बैंकिंग प्रणाली द्वारा की जाती है। मुद्रा की माँग और मुद्रा की आपूर्ति की परस्पर क्रिया ही मुद्रा बाजार का निर्माण करती है।

इस इकाई में हम मानकर चलेंगे कि मौद्रिक प्राधिकरण किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की आपूर्ति को स्वायत्तता से निर्धारित करता है। अतः मुद्रा की कुल माँग जनता द्वारा मुद्रा की माँग को इंगित करती है। इस प्रकार, मुद्रा की माँग का अर्थ जनता के विशिष्ट सदस्यों – परिवारों अथवा फर्मों – द्वारा माँगी गई कुल धनराशि होती है।

मुद्रा की माँग के विभिन्न सिद्धांत हैं, यथा –

(i) मुद्रा की माँग का पारम्परिक सिद्धांत या मुद्रा–परिमाण सिद्धांत (QTM);

(ii) मुद्रा की माँग का केन्जियन सिद्धांत; और

(iii) फ्रीडमैन के पारम्परिक मुद्रा–परिमाण सिद्धांत (QTM) का पुनर्कथन।

इस इकाई में हम मुद्रा की माँग के पारम्परिक सिद्धांत पर चर्चा करेंगे। इसे लोकप्रिय रूप से मुद्रा–परिमाण सिद्धांत (QTM) के रूप में जाना जाता है, जो कि मूल रूप से मूल्य स्तर का एक सिद्धांत है।

याद करें कि मुद्रा के चार प्रकार्य होते हैं –

(i) विनिमय का माध्यम,

(ii) आस्थगित भुगतान का मानक,

(iii) मूल्य संचय, और

(iv) खाते की इकाई।

पारम्परिक अर्थशास्त्रियों के अनुसार, विनिमय के माध्यम के रूप में अपना कार्य करने के लिए मुद्रा की माँग की जाती है। इस लोकप्रिय पारम्परिक मुद्रा–परिमाण सिद्धांत (QTM) के अनेक संस्करण हैं। नीचे हम लेन–देन का एक संस्करण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिसे फिशर के विनिमय का समीकरण कहा जाता है –

$$M.V=P.T \quad \ldots (1.5)$$

जहाँ,

T औसत आकार के लेन–देन की संख्या है, और आय स्तर के लिए परोक्षी है.

M मुद्रा आपूर्ति की मात्रा है,

V मुद्रा के संचलन का वेग है, और

P औसत मूल्य स्तर है।

पारम्परिक अर्थशास्त्री मुद्रा की माँग के सिद्धांत को प्रमाणित करने के लिए मुद्रा–परिमाण सिद्धांत (QTM) पर बहुत अधिक विश्वास करते हैं। इस सिद्धांत अनुसार, जनता के पास विद्यमान मुद्रा की मात्रा और मूल्य स्तर के बीच एक आनुपातिक संबंध होता है।

पूर्ण नियोजन की पारम्परिक अवधारणा के अनुसार, उत्पादन स्तर ज्ञात होता है। तदनुसार, समीकरण (1.5) में चर T राष्ट्रीय आय के लिए एक परोक्षी के रूप में तय किया जाता है। इसके अलावा, चर V को किसी ज्ञात अवधि के दौरान एक रुपये को एक हाथ से दूसरे हाथ में जाने की संख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है। इसका अर्थ है कि यह जनता के भुगतान व्यवहार पर निर्भर करता है, जो कि लंबे समय तक नियत रहता है।

समीकरण (1.5) के दाईं ओर का पद PT लेन–देन की सुविधा के लिए आवश्यक मुद्रा की कुल राशि को निर्दिष्ट करता है, यथा अर्थव्यवस्था में कुल उत्पादन की खरीद या बिक्री।

इसी समीकरण में बाईं ओर का पद MV प्रचलन में रुपये की संख्या और सार्वजनिक भुगतान के लिए प्रत्येक बार उपयोग किए जाने की संख्या का गुणनफल है। तदनुसार, पद MV दी गई अवधि के दौरान लेन–देन के लिए उपलब्ध कुल राशि को निर्दिष्ट करता है।

इस प्रणाली में उस बिंदु पर साम्यावस्था ज्ञात की जाती है जहाँ मुद्रा की माँग (PT) मुद्रा की आपूर्ति (MV) के बराबर हो।

समीकरण (1.5) को निम्नलिखित रूप में फिर से लिखा जा सकता है –

$$P = \frac{V}{T}M \quad \ldots (1.6)$$

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, पद V और Tसमीकरण (1.6) में स्थिरांक हैं। तदनुसार समीकरण इंगित करता है कि मुद्रा आपूर्ति सीधे मूल्य स्तर को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए, यदि चर M का मान चार गुना बढ़ा दिया जाता है तो मूल्य स्तर P चार गुना बढ़ जाएगा। अतएव, पारम्परिक मुद्रा–परिमाण सिद्धांत को 'मूल्य स्तर के सिद्धांत' के रूप में जाना जाता है।

पारम्परिक मुद्रा–परिमाण सिद्धांत (Quantity Theory of Money) का दूसरा दृष्टिकोण लेन–देन की संख्या के बजाय सीधे वास्तविक उत्पादन लेकर मुद्रा की माँग और 'अंकित उत्पादन' के बीच संबंध का वर्णन करता है।

समीकरण के रूप में इसे निम्नवत् व्यक्त किया जा सकता है –

$MV=PY$ … (1.7)

जहाँ,

M मुद्रा की आपूर्ति है,

V मुद्रा का वेग है जो कि मुद्रा के एक हाथ से दूसरे हाथ में जाने की संख्या है,

P उत्पादन मूल्य है, और

Y वास्तविक उत्पादन स्तर है।

अर्थव्यवस्था में मुद्रा की आपूर्ति गुणा संचलन के वेग (MV) से मापा गया मुद्रा का कुल संचय लेन–देन के अंकित मूल्य अथवा अर्थव्यवस्था में आय या उत्पादन के अंकित मूल्य (PY) के बराबर होता है।

समीकरण (1.7) में दी गई पहचान को मुद्रा–परिमाण सिद्धांत में इस धारणा के तहत परिवर्तित किया जाता है कि **Y** और **V** अल्पावधि में स्थिर या नियत होते हैं।

चर **Y** और **V** के स्थिर होने के साथ, मूल्य स्तर के निष्क्रिय होने की अवधारणा का अर्थ होगा कि चर P चर M में परिवर्तनों पर निर्भर करता है, न कि चर M चर P में परिवर्तनों पर निर्भर करता है।

इन मान्यताओं से संकेत मिलता है कि M में कोई भी अल्पकालिक कमी (या वृद्धि) P में आनुपातिक कमी (या वृद्धि) की ओर प्रवृत्त करेगी। इन अवधारणाओं में से किसी एक की भी शिथिलता या अमान्यता M के साथ P के आनुपातिक संबंध को कायम नहीं रखेगी।

पारम्परिक सिद्धांत के अनुसार, अर्थव्यवस्था में पूर्ण नियोजन के साथ पूर्ण प्रतियोगिता के तहत, उत्पादन स्तर निश्चित ($\vec{Y}$) होता है। संचलन का वेग पूर्व–निर्धारित ($\vec{V}$) होता है और मुद्रा की आपूर्ति बहिर्जात रूप से दर्शायी जाती है। समीकरण (1.6) से, मूल्य स्तर (P) मुद्रा आपूर्ति (M) के समानुपाती होता है।

$$P=(\vec{V}/\vec{Y})\times M \quad \text{… (1.8)}$$

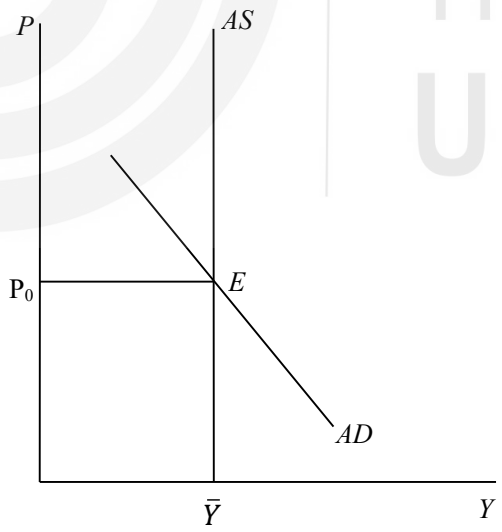

चित्र 1.4: संतुलन उत्पादन और कीमतें

इस प्रकार, श्रम बाजार और उत्पादन फलन उत्पादन स्तर का निर्धारण करते हैं, जबकि मुद्रा आपूर्ति पारम्परिक व्यवस्था में मूल्य स्तर निर्धारित करती है। मुद्रा–परिमाण सिद्धांत भी कुल माँग वक्र देता है (देखें चित्र 1.4)।

यद्यपि पारम्परिक सिद्धांत को अधिकांश अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकार किया जाता है, केन्जियन अर्थशास्त्रियों और मुद्रावादियों ने इसकी आलोचना की है। उनका मानना है कि कीमतों के स्थिर होने पर पारम्परिक सिद्धांत अल्पावधि में विफल हो जाता है। साथ ही, यह प्रमाणित किया गया है कि मुद्रा का वेग कालांतर में नियत नहीं रहता है।

फिर भी पारम्परिक सिद्धांत का उपयोग अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति को समझने और उसे नियंत्रित करने के लिए किया जा सकता है।

1.6 से (Say) का बाजार नियम

से का बाजार नियम पारम्परिक आर्थिक सिद्धांत का एक आधारभूत स्तंभ रहा है। इस नियम के अनुसार, प्रत्येक आपूर्ति अपनी माँग स्वयं उत्पन्न करती है। उपर्युक्त का एक निहितार्थ यह है कि यदि किसी वस्तु का उत्पादन किया जाता है तो वह उत्पादित वस्तु को खरीदने के लिए भूमि, श्रम और पूँजी जैसे कारकों के स्वामियों के लिए यथेष्ट आय उत्पन्न कर देता है। सब होते हुए भी वस्तु की कीमत किराया, वेतन, लाभ आदि उसके घटकों में विभाजित होती है। तदनुसार, यह आय जिंस की कीमत वसूल करने के लिए पर्याप्त होगी।

से के नियम के अनुसार, पूरे उत्पादित निष्पाद को खरीदने के लिए पर्याप्त आय हमेशा विद्यमान रहेगी, ताकि स्वेच्छा–व्यापार अनुस्थापन के तहत कोई अधिशेष न बचे। इस तर्क का प्रयोग करते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कोई बड़ी व्यापार मंदी नहीं होनी चाहिए। यदि ऐसा होता है तो यह जिंसों और मुद्रा के मुक्त प्रवाह में किसी हस्तक्षेप के कारण होगा। इस प्रकार, से के नियम ने पारम्परिक अर्थशास्त्र के स्वेच्छा–व्यापार अनुस्थापन का समर्थन किया। यह नियम कीमतों में पूर्ण लचीलेपन की अवधारणा पर बहुत अधिक निर्भर है।

इस अवधारणा के अंतर्गत जितनी भी मात्रा में उत्पादन होता है, उसे बाजार में बेचा जा सकता है। अल्पावधि में आपूर्ति (या माँग) माँग (या आपूर्ति) से अधिक हो सकती है। कीमतों में गिरावट (या वृद्धि) के माध्यम से ऐसी विसंगति को स्वचालित रूप से और तत्काल समायोजित किया जाता है। इस प्रकार का तात्कालिक समायोजन सभी जिंसों और उपादान आदानों के लिए विद्यमान होता हैं।

से के नियम को पूर्ण प्रतिस्पर्धा का स्वाभाविक परिणाम भी माना जाता है।से के नियम के समर्थकों का मानना है कि यह नियम वस्तु–विनिमय अर्थव्यवस्था के साथ–साथ मुद्रा अर्थव्यवस्था में भी मान्य है। यह नियम कहता है कि निष्पाद के उत्पादन से प्राप्त आय हमेशा कुल माँग, यथा उपभोग एवं निवेश पर व्यय की जाती है। दूसरे शब्दों में, यह नियम बताता है कि धन कभी जमा नहीं होता है और मुद्रा या व्यय प्रवाह (MV) तटस्थ रहता है।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह नियम किसी भी ऐसी वस्तु–विनिमय अर्थव्यवस्था के तहत मान्य है जहाँ उत्पादन मुख्य रूप से उपभोग के लिए होता हो, यथा वहाँ जो कुछ भी उत्पादित होता है उसका लेन–देन वस्तुओं एवं सेवाओं से ही होता है। बहरहाल, वर्तमान युग में इसकी वैधता पर तब संदेह हो सकता है जब उत्पादन भविष्य की अपेक्षाओं और माँग की प्रत्याशाओं पर आधारित होता होय कुछ अत्युत्पादन होना तय होता है।

प्रायः यह कहा जाता है कि यदि उत्पादन का एक बड़ा हिस्सा उपभोग के लिए प्रयोग किया जाता है और शेष, यदि बचाया जाता है, तो निवेश किया जाता है, तो से का नियम मान्य होता है।

बोध प्रश्न 2

1) पारम्परिक मॉडल में उत्पादन और नियोजन का निर्धारण कैसे किया जाता है? संक्षेप में वर्णन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) मुद्रा–परिमाण सिद्धांत (QTM) के निहितार्थ क्या हैं? स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) से के नियम की प्रासंगिकता क्या है? स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

1.7 पारम्परिक द्विभाजन

मुद्रा–परिमाण सिद्धांत (QTM) से हम मुद्रा की आपूर्ति और मूल्य स्तर के बीच संबंध ज्ञात करते हैं। आगे हम अन्य समष्टि–अर्थशास्त्रीय चरों पर मुद्रा आपूर्ति में होने वाले परिवर्तन के प्रभाव के विषय में चर्चा करेंगे।

1.7.1 AD-AS साम्यावस्था

किसी भी अर्थव्यवस्था में वास्तविक चर वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद, वास्तविक पूँजी स्टॉक और नियोजन होते हैं। ये चर कतिपय भौतिक मात्रा को मापते हैं। उदाहरण के लिए, वास्तविक सकल घरेलू उत्पाद को एक वर्ष, तिमाही या माह आदि विशिष्ट अवधि में उत्पादित वस्तुओं एवं सेवाओं की मात्रा के रूप में परिभाषित किया जाता है।

इसी प्रकार, वास्तविक पूँजी स्टॉक को किसी विशिष्ट समय पर उपलब्ध मशीनों एवं संरचनाओं की मात्रा के रूप में परिभाषित किया जाता है। अंकित चर मौद्रिक मूल्य के संदर्भ में व्यक्त किए जाते हैं, उदाहरण के लिए, मूल्य स्तर और रुपये में किसी व्यक्ति का वेतन।

उत्पादन और नियोजन के पारम्परिक सिद्धांत से पता चलता है कि मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन कीमतों, अंकित वेतन, अंकित आय आदि अंकित चरों को प्रभावित करता है। मुद्रा की मात्रा में परिवर्तन, तथापि, वास्तविक चरों को प्रभावित नहीं करता है।

पारम्परिक अर्थशास्त्री एक तर्क यह प्रस्तुत करते हैं कि जनसंख्या, प्रौद्योगिकी, पूँजी स्टॉक, प्रौद्योगिकी की स्थिति, श्रम के सीमांत भौतिक उत्पाद, कार्य एवं अवकाश आदि वास्तविक आपूर्ति–पक्ष कारकों के संबंध में परिवारों की प्राथमिकताएँ ही वास्तविक उत्पादन और नियोजन निर्धारित करती हैं।

कीमतों में लचीलेपन की अवधारणा बाजारों के स्व–समायोजन की ओर ले जाती है। कीमतों एवं वेतन के लचीलेपन से ज्ञात होता है कि मुद्रा की आपूर्ति में परिवर्तन मूल्य स्तर और मौद्रिक वेतन एवं अंकित ब्याज दरों जैसे अंकित मूल्यों को प्रभावित करता है जबकि वास्तविक चर अप्रभावित रहते हैं। मुद्रा आपूर्ति और अंकित चरों में परिवर्तन से वास्तविक आर्थिक चरों की ऐसी स्वतंत्रता को ही 'पारम्परिक द्विभाजन' के रूप में जाना जाता है।

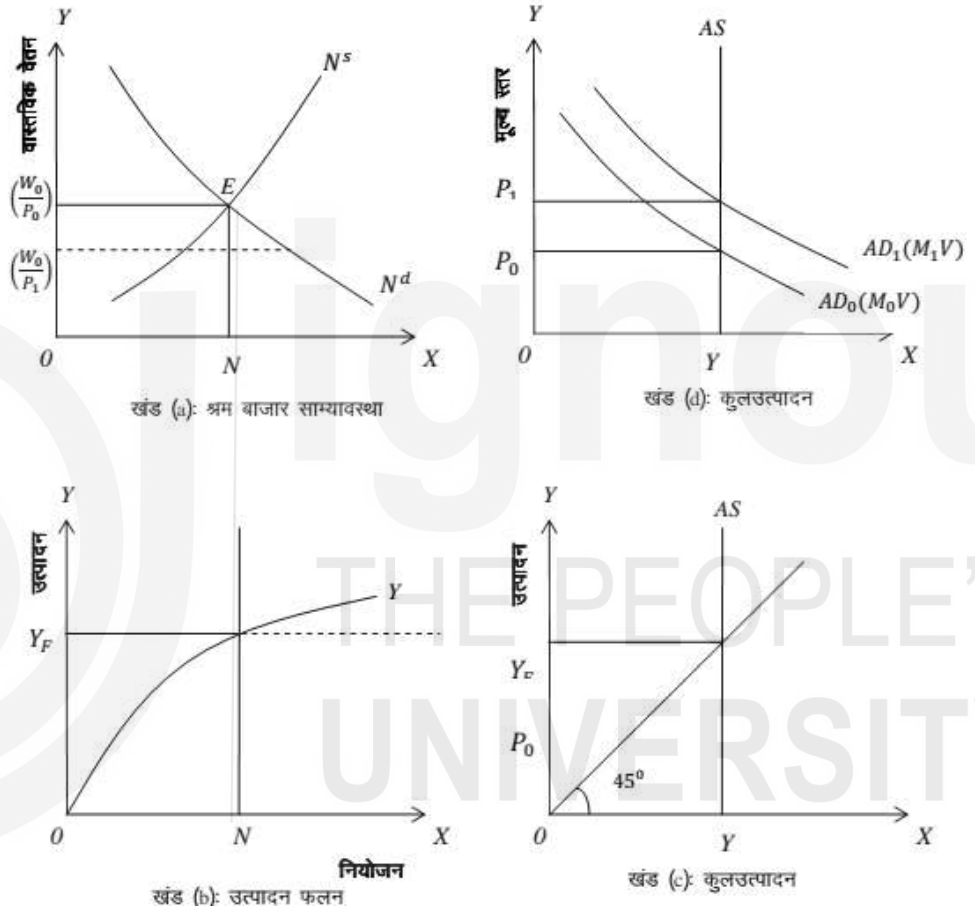

चित्र 1.5: उत्पादन निर्धारण का पारम्परिक मॉडल

1.7.2 मुद्रा की तटस्थता

पारम्परिक द्विभाजन का एक निहितार्थ यह है कि 'मुद्रा तटस्थ होती है'। हमने चित्र 1.5 में 'मुद्रा की तटस्थता' को रेखांकन के रूप में चित्रित किया है। इस चित्र में चार खंड हैं। मान लीजिए किसी अर्थव्यवस्था में मुद्रा की आपूर्ति एक विशिष्ट समय पर M_0 के बराबर है। संबंधित कुल माँग वक्र AD_0 है, जैसा कि चित्र 1.5 के खंड (d) में दर्शाया गया है। कुल आपूर्ति वक्र AS के साथ इसकी अंतर्क्रिया मूल्य स्तर P_0 तय कर देती है।

मूल्य स्तर P_0 के अनुरूप श्रम बाजार साम्यावस्था मुद्रा वेतन दर W_0 निर्धारित कर देता है। कुल आपूर्ति वक्र AD_0 के साथ इसकी अंतर्क्रिया मूल्य स्तर P_0 तय कर देती है। मूल्य स्तर P_0 के अनुरूप श्रम बाजार साम्यावस्था मुद्रा वेतन दर W_0 निर्धारित कर देता है। तदनुसार,

वास्तविक वेतन दर W_0 / P_0 के बराबर हो जाती है और नियोजन का संतुलन स्तर N_F हो जाता है,जैसा कि चित्र 1.5 के खंड (a) में दर्शाया गया है।

उत्पादन फलन ज्ञात होने पर (देखें खंड (b)), नियोजन N_F के संतुलन स्तर N_F पर कुल उत्पादन Y_F होता है।

चलिए, मान लेते हैं कि देश का मौद्रिक प्राधिकरण अपनी मुद्रा आपूर्ति M_0 से बढ़ाकर M_1 तक कर देता है, जिसके कारण कुल माँग वक्र AD_1 में ऊपर की ओर खिसक जाता है, जैसा कि चित्र 1.5 के खंड (d) में दर्शाया गया है। इसके परिणामस्वरूप, मूल्य स्तर P_0 से बढ़कर P_1 हो जाता है। यह वास्तविक वेतन (W_0/P_0) से घटकर (W_0/P_1) पर आ जाने का कारण बनता है,जैसा कि चित्र 1.5 के खंड (a) में दर्शाया गया है।

चूँकि वास्तविक वेतन (W_0/P_1) तक घट जाता है, श्रम की माँग बढ़ जाती है। इस प्रकार, श्रम की माँग श्रम की आपूर्ति से अधिक हो जाती है। पारम्परिक सिद्धांत के अनुसार, यह अंकित वेतन दर W_1 (मूल्य स्तर में वृद्धि के समान अनुपात में) तक बढ़ जाने का कारण बनता है, जिससे वास्तविक वेतन का मूल स्तर बना रहता है (यथा, $W_1/P_1 = W_0/P_0$)।

इस प्रकार, नियोजन के संतुलन स्तर N_F में कोई परिवर्तन नहीं होता है (देखें चित्र 1.5 का खंड (a))।

पहले की वेतन दर और नियोजन स्तर पर वास्तविक उत्पादन प्रभावित नहीं होता है, जैसा कि चित्र 1.5 के खंड (b) में दर्शाया गया है। निष्कर्षतः, जब मुद्रा आपूर्ति का विस्तार होता है तो वास्तविक वेतन, नियोजन और उत्पादन के स्तर को प्रभावित किए बिना ही अंकित वेतन दर और मूल्य स्तर में वृद्धि हो जाती है। मुद्रा आपूर्ति में परिवर्तन से वास्तविक आर्थिक चरों की ऐसी स्वतंत्रता को ही 'मुद्रा की तटस्थता' कहा जाता है।

मुद्रा की तटस्थता के लिए एक निर्णायक सीमा होती है। यह पूर्ण–नियोजन साम्यावस्था से प्राप्त एक मूल परिणाम होता है, जो कि कीमतों के पूर्ण लचीलेपन पर आधारित होता है। यदि मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि (उच्च कीमतों के परिणामस्वरूप) का कोई वास्तविक प्रभाव नहीं होता तो किसी भी अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति कोई गंभीर चिंता काविषय नहीं होती। बहरहाल, मुद्रास्फीति एक गंभीर समस्या है क्योंकि इसके कई प्रतिकूल प्रभाव होते हैं, जैसे लोगों के जीवन की गुणवत्ता में कमी, आर्थिक विकास में कमी आदि। इस प्रकार, मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने और अर्थव्यवस्था में मूल्य स्थिरता बनाए रखने के उपाय किए जाते हैं।.

1.7.3 बचत–निवेश साम्यावस्था

आप देखेंगे कि पारम्परिक सिद्धांत ने मुद्रा के इस प्रकार्य पर बल दिया कि यह विनिमय का माध्यम है। पारम्परिक विचारधारा के अनुसार मुद्रा की माँग केवल लेन–देन के उद्देश्य से की जाती है। अत पारम्परिक सिद्धांत में मुद्रा की आपूर्ति और माँग ब्याज की संतुलन दर निर्धारित नहीं करती है।

मुद्रा की मात्रा में वृद्धि वास्तविक ब्याज दर को भी प्रभावित नहीं करती है। तदनुसार, बचत और निवेश के स्तर में कोई परिवर्तन नहीं होता है (देखें चित्र 1.6)। इससे ज्ञात होता है कि जब मुद्रा की आपूर्ति बढ़ती है तो यह पूँजी बाजार संतुलन (या बचत–निवेश समानता) में विघ्न नहीं डालता है और पूर्ण–नियोजन संतुलन का स्तर अपरिवर्तित रहता है।

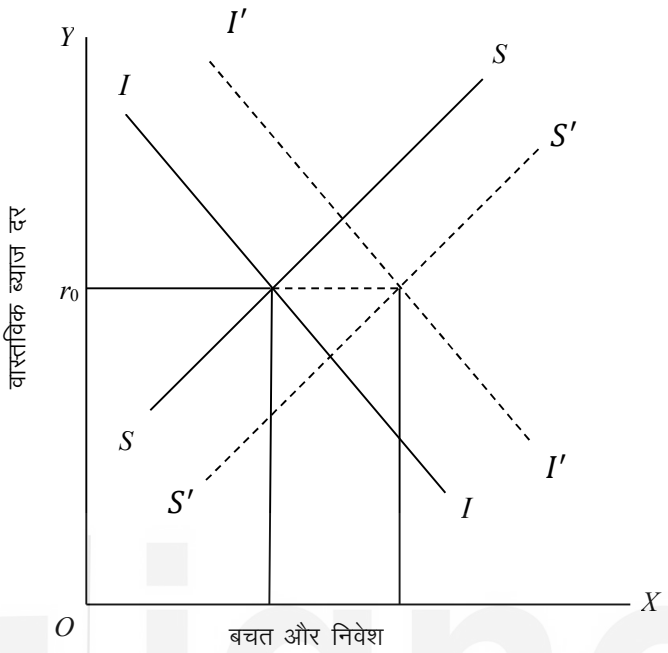

चित्र 1.6: पूँजी बाजार संतुलन

मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि से कीमतों में वृद्धि होती है। कीमतें अधिक होने के कारण किंचित ही निवेश व्यय बढ़ेगा। तथापि, पारम्परिक सिद्धांत के अनुसार, इस प्रकार की वृद्धि कीमतों में वृद्धि के अनुपात में होगी। अतः वास्तविक रूप में निवेश व्यय नहीं बदलेगा। इसे चित्र 1.6 में आरेखीय रूप से समझाया गया है।

हम y–अक्ष पर वास्तविक ब्याज दर और x–अक्ष पर बचत–निवेश का अंकित मूल्य मापते हैं। मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि के कारण अंकित बचत का आपूर्ति वक्रSS से $S'S'$ पर दाएँ नीचे की ओर खिसक जाता है। इसके साथ ही, निवेश माँग वक्र II से $I'I'$ तक उसी राशि में ऊपर की ओर खिसक जाता है।

इसका अर्थ है कि $S'S'$ और $I'I'$ की अंतर्क्रिया उच्च मूल्य स्तर पर भी वास्तविक बचत और वास्तविक निवेश को प्रभावित किए बिना ब्याज दर को निर्धारित कर होती है।

1.8 दीर्घावधि बनाम अल्पावधि

सामान्य तौर पर, आपूर्ति और माँग में विभिन्न कारणों से उतार–चढ़ाव होता है, जो कि उत्पादन स्तर को प्रभावित करता है। उत्पादन में अल्पकालिक और दीर्घकालिक उतार–चढ़ाव के बीच काफी अंतर होता है। अधिकांश अर्थशास्त्रियों का मानना है कि प्रक्रियाओं का व्यवहार अल्प काल और दीर्घ काल के बीच भिन्न–भिन्न होता है। दीर्घावधि में कीमतें लचीली होती हैं, जो कि आपूर्ति या माँग में बदलाव से प्रभावित हो सकती हैं। दूसरी ओर, अल्पावधि में अधिकांश कीमतें पूर्व–निर्धारित स्तर पर ''अनुदार'' होती हैं।

चूँकि अल्पावधि में कीमतों का व्यवहार दीर्घावधि में उससे भिन्न होता है, आर्थिक घटनाओं और नीतियों के प्रभाव अलग–अलग समय में भिन्न होते हैं। चूँकि अल्पावधि में कीमतों का व्यवहार दीर्घावधि में कीमतों के व्यवहार से भिन्न होता है, आर्थिक घटनाओं एवं नीतियों के प्रभाव अलग–अलग समय क्षितिज पर भिन्न–भिन्न होते हैं। दीर्घावधि में पारम्परिक सिद्धांत को लागू माना जाता है, जबकि अल्पावधि में हमें किसी भिन्न विश्लेषणात्मक प्राधार की

आवश्यकता हो सकती है। इकाई 2 में हम केन्जियन मॉडल पर चर्चा करेंगे, जो कि अल्पावधि में अधिक व्यवहार्य होता है।

आइए, अब चित्र 1.7 में अल्पावधि और दीर्घावधि दोनों में मूल्य व्यवहार की व्याख्या करते हैं। कुल आपूर्ति वस्तुओं एवं सेवाओं की वह कुल राशि होती है जो किसी अर्थव्यवस्था में कंपनियाँ बेचती हैं। सकल माँग खरीदी गई वस्तुओं एवं सेवाओं की कुल मात्रा होगी है।

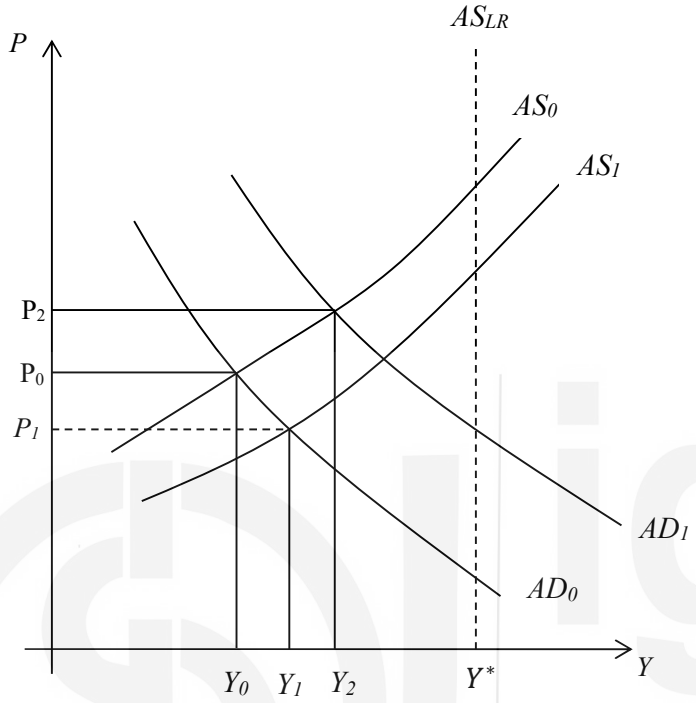

चित्र 1.7: दीर्घावधि और अल्पावधि में कीमतों का निर्धारण

किसी भी मानक AS-AD मॉडल में उत्पादन (Y) X–अक्ष पर दर्शाया जाता है और मूल्य (P) Y–अक्ष पर होता है।

दीर्घावधिक कुल आपूर्ति वक्र (AS_{LR}), जो कि अर्थव्यवस्था के संभावित उत्पादन (पूर्ण–नियोजन उत्पादन) को दर्शाता है, Y^* पर किसी ऊर्ध्वाधर रेखा द्वारा दर्शाया जाता है। अल्पावधिक आपूर्ति वक्र ऊपर की ओर अवनत (AS_0) है।

आपूर्ति और माँग की परस्पर क्रिया उत्पादन के संतुलन स्तर (Y_0) को निर्धारित करती है।

अल्पावधि में आपूर्ति वक्र (AS_0 से AS_1 तक) में किसी बाहरी खिसकाव के परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि (Y_0 से Y_1 तक) और कीमतों में गिरावट (P_0 से P_1 तक) आती है। उक्त AD वक्र (AD_0 से AD_1 तक) में किसी बाहरी खिसकाव के परिणामस्वरूप उत्पादन में तो वृद्धि (Y_0 से Y_2 तक) होती है किंतु कीमतें भी बढ़ (P_0 से P_2 तक) जाती हैं।

आइए, अब कुछ अन्य स्थितियों पर विचार करते हैं। सांकेतिक चरों में अल्पकालिक उतार–चढ़ाव के परिणामस्वरूप आमतौर पर उत्पादन स्तर में बदलाव होता है क्योंकि समष्टि–आर्थिक चर पूरी तरह से लचीले नहीं होते हैं। मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि, उदाहरण के लिए, AD वक्र को दाईं ओर ले जाएगी (यथा, कुल माँग में वृद्धि होगी)। इससे कीमतों और आय में वृद्धि होगी।

इसके विपरीत, मुद्रा की आपूर्ति में कमी के परिणामस्वरूप AD वक्र बाईं ओर खिसक जाएगा, जिससे कीमतों और आय दोनों में कमी आएगी। पारम्परिक सिद्धांत के अनुसार मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि वास्तविक उत्पादन को प्रभावित किए बिना कीमतों में वृद्धि कर देती है। यह नियम दीर्घावधि में तो लागू हो सकता है, किंतु अल्पावधि में नहीं।

बोध प्रश्न 3

1) पारम्परिक द्विभाजन का क्या अर्थ है? स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) मुद्रा को तटस्थ क्यों माना जाता है? इसके निहितार्थ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

3) क्या पारम्परिक सिद्धांत अल्पावधि में लागू होता है? स्पष्ट करें।

.....

.....

.....

.....

.....

1.9 सारांश

इस इकाई में, हमने समष्टि–अर्थशास्त्रीय सिद्धांत की विभिन्न विचारधाराओं पर चर्चा की, जो कि समय के साथ विश्व अर्थव्यवस्था में कुछ घटनाओं के प्रत्युत्तर विकसित हुई हैं।

वेतन और कीमतों के पूर्ण लचीलेपन की अवधारणा पर निर्भर करते हुए, पारम्परिक सिद्धांत का निष्कर्ष है कि अर्थव्यवस्था हमेशा उत्पादन के पूर्ण–नियोजन स्तर पर संतुलन की ओर प्रवृत्त होती है।

साथ ही, पूँजी बाजार हमेशा यह सुनिश्चित करता है कि बाजार में पर्याप्त माँग हो। मुद्रा का पारम्परिक मात्रा सिद्धांत वास्तविक आर्थिक चर को प्रभावित किए बिना कीमतों और वेतन दरों के स्तर को निर्धारित करता है।

पारम्परिक सिद्धांत इस बात का समर्थन करता है कि नीतिगत हस्तक्षेप अर्थव्यवस्था में उत्पादन स्तर को प्रभावित नहीं कर सकता क्योंकि वह स्व–समंजनकारी होता है।

पारम्परिक प्राधार में मुद्रा को इस अर्थ में तटस्थ माना जाता है कि वह वास्तविक चर को प्रभावित नहीं करती है।

1.10 बोध प्रश्नों के उत्तर अथवा संकेत

बोध प्रश्न 1

1) पाठांश 1.3 में हमने पारम्परिक सिद्धांत के प्रमुख अभिलक्षणों पर चर्चा की है। इसे पढ़ें और उत्तर दें।

2) नव–पारम्परिक अर्थशास्त्र किसी सामान्य संतुलन प्राधार, एकाधिक व्यष्टिक आधार और तर्कसंगत अपेक्षाओं पर विचार करता है।

बोध प्रश्न 2

1) पाठांश 1.4.1 पढ़ें, चित्र 1.5 देखें और प्रक्रिया का वर्णन करें।

2) मुद्रा–परिमाण सिद्धांत (MV = PY) मुद्रा की आपूर्ति, मुद्रा की गति, मूल्य स्तर और उत्पादन के बीच संबंध स्थापित करता है। जब मुद्रा का वेग और उत्पादन स्तर स्थिर रहता है तो मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि से कीमतों में वृद्धि होती है।

3) से (Say) के नियम के अनुसार, आपूर्ति अपनी माँग स्वयं उत्पन्न करती है। यह नियम किसी भी अर्थव्यवस्था में बेरोजगारी की संभावना को निरस्त करता है।

बोध प्रश्न 3

1) यह पारम्परिक प्रस्थापना को इंगित करता है कि अंकित चर किसी अर्थव्यवस्था में वास्तविक चर को प्रभावित नहीं करते हैं। यह पूर्ण प्रतिस्पर्धा और कीमतों एवं वेतन में पूर्ण लचीलेपन की पारम्परिक मान्यताओं से उत्पन्न होता है। पारम्परिक अर्थशास्त्रियों ने इस बात पर बल दिया कि विनिमय के माध्यम के रूप में मुद्रा की माँग की जाती है।

2) मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि से कीमतों और वेतन में आनुपातिक वृद्धि होती है; उत्पादन और नियोजन जैसे वास्तविक चर अपरिवर्तित रहते हैं।

3) कीमतें और वेतन पूरी तरह से लोचदार नहीं हो सकते हैं। कीमतों और वेतन में कठोरता से उत्पादन एवं नियोजन में तात्कालिक समायोजन नहीं हो सकता है। इस प्रकार, पारम्परिक सिद्धांत अल्पावधि में लागू नहीं हो सकता है।